न्यायामूर्ति स्वतंत्र कुमार के समक्ष

ठाकुर दास, -याचिकाकर्ता

बनाम

चंदर प्रकाश, -उत्तरदाता

सी. आर. सं. 2298 सन *1998*

9 जुलाई, 1998

सिविल प्रक्रिया संहिता, *1908* -आदेश *39* नियम *1* और *2*- याचिकाकर्ता द्वारा मकान मालिक को दुकान और भूखंड पर अपने कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए निषेधाज्ञा की मांग की गई है - दुकान में याचिकाकर्ता को शामिल करने वाले लिखित दस्तावेज में भूखंड का उल्लेख नहीं है -किराए की रसीदें भूखंड को किरायेदारी के हिस्से के रूप में नहीं दर्शाती हैं -भूखंड के संबंध में याचिकाकर्ता की स्थिति अनधिकृत होगी-- अनधिकृत अधिभोगकर्ता वास्तविक मालिक के खिलाफ निषेधाज्ञा का दावा नहीं कर सकता है।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि जहां पक्षकारों द्वारा किसी दस्तावेज का निष्पादन किया जाता है, वहां पक्षकार सामान्य रूप से उस दस्तावेज के नियमों और शर्तों से बाध्य होंगे और उसमें बताए गए नियम और शर्तों के विपरीत कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते है।

सामान्य परिस्थितियों में, यह रसीद से पता चल सकता है कि दुकान और उससे सटे हुये भूखण्ड का क्षेत्र जो याचिकाकर्ता को किराए पर दिया जा रहा है। यह स्वीकृत है कि, दस्तावेज़ ने ऐसा कोई इन्द्राज नही किया है। याचिकाकर्ता के द्वारा की गई प्रतिपादनाओं के तथ्यों के संबंध में कोई उपधारणा नहीं की जा सकती है। विद्वान निचली न्यायालयों द्वारा समवर्ती रूप से प्राप्त यह निष्कर्ष कम से कम प्रथम दृष्टया सही दृष्टिकोण प्रतीत होता है। एक बार जब इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया जाता है, तो विचाराधीन भूखंड के संबंध में वर्तमान याचिकाकर्ता की स्थिति अनाधिकृत कब्जेदार की होगी, भले ही उसका कब्जा तर्क के लिए स्वीकार किया गया हो। संपत्ति के अनधिकृत कब्जे वाला व्यक्ति वास्तविक मालिक के विरूद्ध निषेधाज्ञा का दावा नहीं कर सकता है।

(पैरा 3)

पी. के. मुतनेजा, अधिवक्ता , याचिकाकर्ता के लिए ।

जे. सी. नागपाल, अधिवक्ता, प्रतिवादी कैविएटर के लिए।

निर्णय

स्वतंत्र कुमार, जे.

(1) यह निगरानी विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, करनाल द्वारा 5 फरवरी, 1998 को पारित आदेश के खिलाफ निर्देशित किया गया है, जिसके द्वारा विद्वान प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वादी-अपीलार्थी द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय के द्वारा पारित निषेधाज्ञा आदेश दिनांकित 30 सितंबर, 1997, अन्तर्गत सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ सपठित आदेश 39 नियम 1 और 2, के खारिज करने के विरूद्ध दायर अपील अपने आदेश के द्वारा खारिज कर दी थी।

(2) जब यह निगरानी स्वीकार करने के लिए पेश हुई तो कैविएटर के विद्वान अधिवक्ता श्री जे. सी. नागपाल, याचिकाकर्ता को किसी भी अंतरिम आदेश के अनुदान का विरोध करने के लिए पेश हुए थे। पक्षों के विद्वान वकील की सहमति से, निगरानी को गुण-दोष के आधार पर सुना गया।

(3) वादी ने प्रतिवादी को वादपत्र में वर्णित दुकान व भूखंड पर अपने शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका जाकर स्थायी निषेधाज्ञा जारी करने हेतु यह मुकदमा दायर किया था। वादी ने 1980 से किरायेदार के रूप में दुकान पर कब्जे में होने का दावा किया था और दुकान और भूखंड का उपयोग कबारी के अपने व्यवसाय को चलाने के उद्देश्य से किया जाने का कथन किया था। यह आरोप लगाया गया था कि मुकदमे में प्रतिवादी वादी को वादग्रस्त परिसर से जबरन बेदखल करने का प्रयास कर रहा था। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ सपठित आदेश 39 नियम 1 और 2 के तहत अंतरिम निषेधाज्ञा देने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था। इस आवेदन का प्रतिवादी ने विरोध किया था। यह प्रतिवादी का मामला था कि वादी दुकान के संबंध में किरायेदार था और इसलिए 10 मार्च, 1983 के किराए के नोट द्वारा शामिल किया गया था। यह दलील दी गई थी कि विचाराधीन भूखंड पर उनका कोई अधिकार नहीं था।विद्वान विचारण न्यायालय ने अपने 30 सितंबर, 1997 के आदेश के माध्यम से पाया कि वादी का कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं था और न ही सुविधा का संतुलन उसके पक्ष में था, परिणामस्वरूप, उसने निषेधाज्ञा आवेदन को खारिज कर दिया। जैसा कि पहले ही विदित है, इस आदेश को वादी द्वारा अपील में खारिज कराने का असफल प्रयास किया गया था जिसके परिणामस्वरूप वादी-याचिकाकर्ता द्वारा यह निगरानी दाखिल की गयी था। यह तर्क दिया जाता है कि भूखंड किरायेदार के

कब्जे में रहा है और इस प्रकार, वह मालिक के खिलाफ उस संबंध में निषेधाज्ञा का हकदार था।रिकॉर्ड पर रखी गई तस्वीरों से पता चलता है कि वर्तमान याचिकाकर्ता की किरायेदारी में दुकान का दरवाजा भूखण्ड की ओर खुला था। यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि अपीलार्थी ने वाद की स्थापना के बाद स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के लिए एक आवेदन दायर किया था जिसे विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और अस्वीकृति के आदेश पर कभी भी कोई निगरानी या अन्यथा चुनौती नहीं की गयी थी। पक्षकारों के बीच एक लिखित दस्तावेज है जिसके तहत याचिकाकर्ता को किरायेदार के रूप में शामिल किया गया था। 10 मार्च, 1983 के इस दस्तावेज़ से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि याचिकाकर्ता को दुकान में किरायेदार के रूप में शामिल किया गया था और किराए की रसीद से यह नहीं पता चलता है कि भूखंड भी याचिकाकर्ता की किरायेदारी के तहत है। जहां किसी दस्तावेज़ को आम तौर पर पक्षों द्वारा निष्पादित किया जाता है, पक्ष उस दस्तावेज़ के नियमों और शर्तों से बाध्य होंगे और उसमें बताए गए नियमों और शर्तों के विपरीत कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते हैं। सामान्य परिस्थितियों में, रसीद से पता चल सकता है कि यह दुकान और उससे सटा हुआ क्षेत्र याचिकाकर्ता को किराए पर दिया जा रहा है। यह स्वीकृत है कि दस्तावेज़ मे ऐसा इन्द्राज नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा बताए गए तथ्यों के संबंध में कोई उपधारणा नहीं हो सकती है। निचली अदलातों के द्वारा समवर्ती रूप से निकाला गया यह निष्कर्ष कम से कम प्रथम दृष्टया एक सही दृष्टिकोण प्रतीत होता है।

एक बार जब इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया जाता है, तो विचाराधीन भूखंड के संबंध में वर्तमान याचिकाकर्ता की स्थिति अनधिकृत कब्जेदार की होगी, भले ही उसका कब्जा तर्क के लिए स्वीकार किया गया हो। संपत्ति के अनधिकृत कब्जे वाला व्यक्ति वास्तविक मालिक के खिलाफ निषेधाज्ञा का दावा नहीं कर सकता है। यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि वादपत्र के पैरा ग्राफ संख्या 2 में याचिकाकर्ता ने 1980 से दुकान और भूखंड का 300 प्रति माह की दर से किरायेदार होने का दावा किया था। लिखित बयान में यह विशेष रूप से अनुरोध किया गया था कि पक्षों के बीच एक किराए का नोट लिखा गया था जिसमें याचिकाकर्ता को 1 मार्च, 1983 से केवल दुकान 400/- प्रति माह की दर से किराए पर दी गई थी और भूखंड किरायेदार परिसर का हिस्सा नहीं था। 10 मार्च, 1983 के दस्तावेज़ की प्रति रिकॉर्ड में प्रस्तुत की गई थी। ये कथन अभिलेख पर निर्विवाद बने हुए हैं।

(4) इस स्तर पर, जब न्यायालय को एक प्रथम दृष्टया अवलोकन करना होता है तो पक्षों के बीच किसी लिखित दस्तावेज को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है या इसकी सामग्री से भिन्न नहीं पढ़ा जा सकता है। माननीय उच्चतम न्यायालय के लालू यशवंत सिंह द्वारा उत्तराधिकारीगण बनाम राव जगदीश सिंह और अन्य[1] के फैसले पर भरोसा करते हुए, यह तर्क दिया गया कि मकान मालिक को किरायेदारी समाप्त होने की स्थिति में संपत्ति पर फिर से प्रवेश करने का कोई अधिकार नहीं है। इस मामले के तथ्य पूरी तरह से अलग हैं; संपत्ति में किरायेदारी की सीमा का कोई विवाद नहीं थी, बल्कि किरायेदारी अधिकार का उन्मूलन ही विवाद का विषय था। इसके अलावा, अदालत द्वारा मकान मालिक को कब्जा देने के लिए आदेशात्मक निषेधाज्ञा का कोई आदेश पारित नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता को जो अस्वीकार कर दिया गया है वह निषेधाज्ञा की एक न्यायसंगत राहत है क्योंकि याचिकाकर्ता प्रथम दृष्टया मामला, सुविधा का संतुलन और विचाराधीन संपत्ति पर कोई कानूनी या वैध अधिकार स्थापित करने में विफल रहा है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के वाल्टर लुई फ्रैंकलिन द्वारा उत्तराधिकारीगण बनाम जॉर्ज सिंह द्वारा उत्तराधिकारीगण[2] के फैसले पर भी निर्भरता समान रूप से गलत है। इस मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि बिक्री विलेख में एक स्पष्ट कथन था जिसे पक्षकारों यानी उस मामले में प्रतिवादी के लिए बाध्यकारी माना गया था और इसमें कहा गया था कि यह अपीलार्थी के कब्जे में था, परिणामस्वरूप, निचली अदालत द्वारा स्थायी निषेधाज्ञा के अनुदान को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था।

(5) उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मैं विवादित आदेशों में अधिकार क्षेत्र की कोई त्रुटि पाये जाने में असमर्थ हूं। याचिकाकर्ता को निषेधाज्ञा की न्यायसंगत राहत को अस्वीकार करने में नीचे दिए गए विद्वान न्यायालयों द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत इस न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण न्यायशास्त्र के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले कानून के सुस्थापित नियमों के भीतर किसी भी हस्तक्षेप की मांग नहीं करता है।

(6) इस निगरानी में कोई योग्यता नहीं पाए जाने पर इसे खारिज कर दिया जाता है।

जे एस टी

अस्वीकरण : *स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।*

परीक्षित
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
(Trainee Judicial Officer)
महम, रोहतक,हरियाणा

1 ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 620
2 1997 (3) एस. सी. सी 503